भारतीय सौन्दर्यबोध एवं भूमण्डलीकरण

डॉ. अतुल कुमार मिश्र
परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र)
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

परम्परानुसार सौन्दर्यशास्त्र दर्शनशास्त्र का एक हिस्सा माना जाता है। सौन्दर्यशास्त्र मानव की कला चेतना और उससे सम्बन्धित आनन्दानुभूति का विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करता है। 'स्थेटिक्स' या सौन्दर्यशास्त्र से तात्पर्य सुन्दर के विषय में विचार या सौन्दर्य दर्शन से है जो कि सौन्दर्यचेतना की उपज है। सौन्दर्यचेतना मनुष्य की वह भावनात्मक अवस्था है जिसे सौन्दर्यबोध कहते हैं। जब कोई वस्तु अथवा कला भौतिक एवं मानसिक रूप से हमें इन्द्रिय आनन्द का अनुभव कराती है तो वह सौन्दर्य की वस्तु या कला कहलाती है। और किसी कलाकृति अथवा वस्तु को देखकर आनन्द की सृष्टि होने को सौन्दर्यबोध कहते हैं। इस सौन्दर्यबोध को वाह्य एवं आन्तरिक स्वरूपों में स्पष्ट कर सकते हैं। वाह्य स्वरूप जिससे हमारी इन्द्रियों को सुख मिलता है और आन्तरिक स्वरूप ऊपरी सतह पर क्षण भर के सौन्दर्य से मोहित नहीं होता क्योंकि कि उसका अनुभव आत्मा होता है। इसी आत्मिक सौन्दर्य से परम सत्य की प्राप्ति होती है। इसका प्रबल माध्यम ललित कलाएं हैं जिसमें जिसका सर्वोत्तम प्रकार संगीत है।

भारतीय सौन्दर्य शास्त्र के अन्तर्गत जब सौन्दर्य शब्द की चर्चा की जाए तो सत्यं शिवम् सुन्दरम एवं सच्चिदानंद शब्द स्मरण में आते हैं। सौन्दर्य की मीमांसा अत्यंत प्राचीन काल से होती आई है तथा भारतीयों की सौन्दर्य दृष्टि एवं सौन्दर्य मीमांसा संभवतः पाश्चात्यों से अधिक प्राचीन हैं किन्तु भारतीय विद्वानों ने सौन्दर्य दर्शन की चर्चा रसानुभूति से की हैं यदि सौन्दर्य शास्त्र को सौन्दर्य मूल्य एवं सौन्दर्य बोध का ही दर्शन तथा विज्ञान माना जाये तो भी भारतीय परम्परा में इसकी पूर्ण समृद्धि प्राप्त होगी। समस्त कलाओं काव्य, नाटक आदि के सिद्धान्त निरूपण में सौन्दर्य को सर्वोपरि स्थान दिया गया है, पश्चिम में सौन्दर्य शास्त्र को दर्शन के एक अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः वहां दार्शनिक चिंतन के अन्तर्गत सौन्दर्य चिंतन की परम्परा आरम्भ से रही है। भारतीय सौन्दर्य शास्त्र में कलाकृति का आकलन, विश्लेषण और तुलना तथा कलाकृति की और मानव व्यवहार तथा अनुभूति जैसे आधार तत्वों के सम्बन्ध में सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भारतीयों की दृष्टि में सौन्दर्य का बहुत मूल्य था और उन्होंने सौन्दर्य के विविध रूपों और छबियों को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ देखा था। ऋग्वेद में सौन्दर्य को 'श्री' नाम से संबोधित किया गया है। ऋग्वेद में 'चारू' शब्द का प्रयोग भी सुंदर के अभिप्राय से हुआ है। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर उसका अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन है। वैदिक ऋषि सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का समन्वय सौन्दर्य में मानते हुए सौन्दर्य को परम सत्ता के गुणों के रूप में देखते हैं। वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हम उन वस्तुओं को प्राप्त कर सकें जो सुंदर हैं।

ऋग्वेद में इन्द्र, रुद्र और विष्णु के विराट् और तेजस्वी रूपों का वर्णन अनेक ऋचाओं में मिलता है और उसमें सौन्दर्य के ऐन्द्रिय स्वरूप का स्पष्ट संकेत मिलता है। सौन्दर्य के मानव रूप की स्वीकृति वैदिक ऋचाओं में मिलती है।

यजुर्वेद में सौन्दर्य के अभिप्राय से अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। वेदों में सौन्दर्य के अन्तर्वाह्य गुणों व लक्षणों का संकेत मिलता है। वैदिक ऋचाओं में सौन्दर्य के मानस रूप का वर्णन है, वैदिक कवि सौन्दर्य के

लौकिक और दिव्य, एन्द्रिय और आत्मिक दोनों रूपों का वर्णन करते हैं लेकिन उपनिषद में केवल आत्मिक सौन्दर्य का वर्णन मिलता है। भारतीय दर्शन में सौन्दर्य चिंतन के स्थान पर ब्रहम, जीव, जगत, माया, मोक्ष आदि ही उसके प्रतिपाद्य विषय हैं जबकि उपनिषद में अद्वैत भाव पर अधिक जोर दिया गया है अर्थात् अनेकता में एकता और यही सामंजस्य सौन्दर्य का मूल लक्षण है। समस्त प्राणियों में परम सुंदर ईश्वर का आनंद रूप ही व्याप्त है, आनन्द ही ब्रह्महै और उसी से जीवन है। तैत्तिरीय उपनिषद में भी आनन्द और रस को ब्रह्म के समान माना गया है। (रसो वैःसः)

उपनिषद में आत्मा के सौन्दर्य का वर्णन मिलता है। उपनिषद का आधारभूत सिद्धांत है अद्वैत अर्थात् अनेकता में एकता और यही सामंजस्य सौन्दर्य का मूल लक्षण है। उपनिषद में सौन्दर्य के दो लक्षण प्रकाश और आनन्द का वर्णन मिलता है। इसी आधार पर आगे चलकर आचार्यों ने रस को स्वप्रकाशानंद कहा।

गीता में सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदि के लिए 'विभूति' शब्द का प्रयोग हुआ है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा,''नान्तोस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां।'' शंकराचार्य ने भी सौन्दर्य लहरी में सौन्दर्य वर्णन करते समय लावण्य, द्युति, विमल, आभा शब्दों का प्रयोग सौन्दर्य के अर्थ में किया है।

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में भी काव्य के दस सौन्दर्य गुणों का वर्णन मिलता है, सुंदर के लिए ललित और विविध कलाओं आदि के सन्दर्भ में सौन्दर्य के सिद्धांत लक्षण व गुणों का परिचय मिलता है। नाट्शास्त्र में सभी के सौन्दर्य गुणों के सन्दर्भ में ललित, विद्वत, शोभा, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, लावण्य आदि का विवेचन मिलता है। नाट्यशास्त्र में सभी के गुणों के संदर्भ में ललित, विद्वत, शोभा, दीप्ति, माधुर्य, धैर्य, लावण्य आदि का विवेचन मिलता है। नाट्यशास्त्र में गायन, वादन, नृत्य के सौन्दर्य विधान का वर्णन किया गया है और कलाओं के सौन्दर्य विधान पर सूक्ष्मता से विचार किया गया है। ऋषियों ने जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है, वह परम तत्व का सौन्दर्य है उन्होंने उसे प्रकृति और मानव ने भी देखने की चेष्टा की है।

उनके अनुसार परम तत्व बुद्धि से सत्य, अभ्यास से शिव और मानव तथा प्रकृति के द्वारा सुंदर हो जाता है। ब्रह्म के सच्चिदानंद रूप से तीनों की एकता का पता चलता है। आनन्द ब्रह्म का ही पर्याय है। सौन्दर्य आनन्द का ही मूर्त बिम्ब और व्यक्तिकरण है। यह उस ब्रह्म का ही सौन्दर्य है जो आनन्द की अभिव्यक्ति है और रस उसका स्वरूप है। परमतत्व का यह सौन्दर्य प्रकृति के कण–कण में विद्यमान है। इस प्रकार सौन्दर्य आध्यात्मिक रूप का निरूपण अत्यन्त प्राचीन काल से होता आ रहा हैं यह भारतीय सौन्दर्य चेतना आदि कवि वाल्मीकी से पूर्व भी अत्यन्त जागृत अवस्था में थी, और इस चेतना ने परवर्ती भारतीय साहित्य को भी बहुत प्रभावित किया।

भारतीय साहित्यकारों ने सौन्दर्य के बाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों को महत्व दिया है। संस्कृत कवियों का सौन्दर्य दर्शन उनके गौरव के अनुरूप अत्यन्त समृद्ध एवं परिष्कृत है। रामायण में सुंदर शब्द सामान्य रूप से प्रयुक्त हुआ है – रामायण के एक भाग का नाम ही सुंदरकाण्ड है। 'सुन्दर' की अपेक्षा अन्य पर्याय शब्दों का प्रयोग तथा काव्यशास्त्र दोनों में मिलता है। संस्कृत वांगमय में सुंदर के पर्याय रुचिर, चारु, सुश्म, साधु, शोभन, कान्त, मनोरथ, मनोज्ञ, मंजु, मंजुल, ललित, काम्य, कमनीय आदि मिलते हैं। सुन्दर की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की गई है। सु+उन्द+अरन, जिसका शब्दार्थ है नयनों को सिक्त कर देने वाला अर्थात् सुख देने वाला। चारु तथा रुचिर का अर्थ है प्रिय या प्रीतिकर और काम्य में भी काम्यता का भाव प्रमुख है। इस प्रकार सौन्दर्य एक गोचर तत्व है, जो वस्तु या आलम्बन का गुण है, सौन्दर्य के मूल में प्रेम की भावना,

कामना प्रत्यक्ष रहती है, सौन्दर्य में अंग–साम्य अथवा सामंजस्य की धारणा निहित है, सौन्दर्य का सम्बन्ध श्रृंगार के साथ ही है, जो ललित शब्द से स्पष्ट है।

कालिदास को सौन्दर्यवादी कवि कहा गया, क्योंकि उन्होंने अनेक रूपों में सौन्दर्य का निरूपण किया हैं उनके विचार में जो सुन्दर है, वह सर्वथा सुन्दर है और उसे किसी प्रसाधन की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण के लिए उन्होंने पार्वती के सौन्दर्य कावर्णन इस प्रकार किया है, ''पार्वती का मुख जटाओं से भी उतना ही सुन्दर लगता है, जितना कि सुन्दर वेणियों से अलंकृत होने पर लगता था।'' यहां कालिदास ने वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य का वर्णन किया है। कवि कहते हैं, ''सुंदर किसी भी अवस्था में सुन्दर और रमणीय ही रहेगा और कोई भी वस्तु उसकी चारुता का पोषण कर सकती है।'' कालिदास के अनुसार सच्चा सौन्दर्य वह है जो पाप वृत्ति की ओर अग्रसर न होकर सात्विकता की प्रेरणा देता है। भारतीय परम्परा में सौन्दर्य के रूप में मानवीय रूप आकार को नहीं बल्कि सौन्दर्य–प्रभाव को ध्यान में रखकर प्रकृति सौन्दर्य को ही आदर्श माना गया है।

भारतीय साहित्य में कवि 'भारवि' ने भी सौन्दर्य की स्वाभाविकता पर बल दिया है। उन्होंने सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ मानते हुए यह दिखाया है कि जो रम्य है, सुंदर है उसके लिए कोई आहार्य गुण अपेक्षित नहीं होता। वे अप्सराओं के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि, ''अर्जुन की तपस्या को भंग करने के लिए स्वर्ग से आती हुई अप्सराओं का सौन्दर्य धूप के कारण कुछ मलिन पड़ गया, क्योंकि प्रस्वेद के कारण प्रसाधन धुल पुंछ गए, फिर भी उनके सौन्दर्य की चारुता अप्रभावित रही।

वामन के अनुसार ''काव्य का सार तत्व है अलंकार और अलंकार का अर्थ है सौन्दर्य अर्थात सौन्दर्य काव्य का प्राण है।'' उन्होंने सौन्दर्य अलंकार कह कर काव्य सौन्दर्य और अलंकार की एक ही स्थिति मान ली है। कुन्तक के अनुसार –''अर्थ, शब्द और अलंकार इन तीनों के उत्कर्ष के अतिरिक्त प्रतिगुण अथवा रंजकत्व के कारण सुंदर कुछ अपूर्व ही सहृदय आह्लादकत्व है।'' कवि माद्य ने सौन्दर्य के विषय में नवीन और प्रभावशाली धारण व्यक्त की है, उनकी दृष्टि में सौन्दर्य वह है जो क्षण–क्षण में नवीनता प्राप्त करे। ''क्षणे–क्षणे यत्रवतामुपेति तदेव रूपं रमणीयताया।'' उन्होंने सौन्दर्य के आन्तरिक गुण को महत्व दिया है। श्री हर्ष ने सौन्दर्य की अभिनव कल्पना प्रस्तुत की है। सौन्दर्य के स्थायित्व को दिखाने के लिए उन्होंने चन्द्र और कमल को एक साथ रखा है। दिन में चन्द्र निष्प्रभ हो जाता है और रात में कमल संकुचित हो जाता है, जबकि सौन्दर्य सर्वदा एक रस और कांतिमय रहता है। उन्होंने दमयन्ती के सौन्दर्य की विशिष्टता दिखायी है, जिनमें चन्द्र और कमल की श्री को एक साथ देखा जा सकता है।

वाण की कृतियों में विविध वर्णों से स्वर चित्रों का अपूर्व संकलन मिलता है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अत्यन्त उच्छवसित वाणी में इन चित्रों की वर्ण छटा का स्तवन किया है। कादम्बरी तथा हर्ष चरित में चित्रों के विविध भेदों, रचना प्रक्रिया आदि के उल्लेख मिलते हैं। भामह ने काव्यालंकार में लिखा है, ''रमणी के नेत्रों में लगे काले अंजन के सदृश कहीं आश्रय के सौन्दर्य के कारण बोध रमणीयता धारण कर लेते है।''

दण्डी के अनुसार ''पहले नायक के गुणों का वर्णन कर, बाद में प्रतिनायक का और नायक के द्वारा उसके निराकरण का वर्णन किया जाये।'' यहां वर्णन पद्धति के सन्दर्भ में सुन्दर का प्रयोग हुआ है। मम्मट मानते हैं कि वस्तु के सौन्दर्य के कारण तथा आस्वाद का विषय होने से अन्य अनुमीयमान विषयों से विलक्षण होता है। भट्ट लोल्लट ने स्थाई भाव की लौकिक अनुभूति को सौन्दर्यानुभूति बताया है।

भट्ट नायक ने सौन्दर्यानुभूति को आनन्दात्मक अनुभव बताया है, जिसमें सत्व गुणों की प्रधानता रहती है उन्होंने सौन्दर्यानुभूति को बौद्धिक आनन्द के रूप में माना है और साथ ही इसमें रज और तम का मिश्रण भी स्वीकार किया है। इनके विचार से भावनात्मक आनन्द, कल्पनात्मक आनन्द और बौद्धिक आनन्द तीनों के मिश्रण से सौन्दर्यानुभूति होती है। संस्कृत कवि भवभूति मूलतः भावना के कलाकार हैं उन्होंने भी सौन्दर्य का वर्णन करते समय प्रकृति के विभिन्न उपादानों को ध्यान में रखा है। भवभूति द्वारा अंकित भौतिक सौन्दर्य के चित्र भव्य हैं, इसमें सन्देह नहीं।

भारतीय साहित्य, संगीत, चित्र, मूर्ति और वास्तुकलाओं का मौलिक सौन्दर्य से रहा है, और उसमें विविधरूपों में सौन्दर्य की अभिव्यंजना होती रही है। भारतीय काव्यशास्त्र को विशेषरूप से सौन्दर्य से सम्बद्ध रहा है। रस सम्प्रदाय में तो रस और सौन्दर्य पर विस्तृत विचार किया गया है। भरत मुनि से लेकर पंडित राज जगन्नाथ तक सभी रसवादी आचार्यों ने रास और व्यापक समीकरण को पूरी विद्वता के साथ दिखाया है। संस्कृत के पहले आचार्य पंडितराज जगन्नाथ हैं, जिन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में रमणीय का उल्लेख किया है पंडित जगन्नाथ ने ''रमणीयता'' को ही सौन्दर्य माना है। उन्होंने रमणीयता को ही काव्य का सौन्दर्य माना है जिसके ज्ञान से लोकोत्तर आनंद प्राप्त हो वह अर्थ रमणीय है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चमत्कारिक अनुभूति को ही रसानुभूति मानते हुए कहा कि करुणरस में दुःख की अनुभूति होती है, जो कलाजन्य होने के कारण आनन्दानुभूति कराता है। वे आनन्द की अनुभूति के स्थान पर चमत्कारिक अनुभूति को सौन्दर्यानुभूति मानते हैं जब हम किसी प्राकृतिक दृश्य या किसी सुन्दर कलाकृति को देखते हैं तो हम उसमें इतना एकरूप हो जाते हैं कि कुछ समय में लिए हम व्यावहारिक जगत से सम्बन्ध तोड़ देते हैं इसी अवस्था में हमें रसानुभूति (सौन्दर्यानुभूति) होती है।

श्री आनन्द कुमार स्वामी के विचार से सौन्दर्यानुभूति आनन्द की अवस्था है। उन्होंने सौन्दर्यानुभूति से प्राप्त आनन्द को अन्य सुखों से प्राप्त आनन्द से भिन्न माना है, क्योंकि अन्य स्रोतों से प्राप्त आनन्द में इन्द्रियानुभूति रहती है, किन्तु सौन्दर्यानुभूति से प्राप्त आनन्द की कोई सीमा नहीं रहती। सौन्दर्यानुभूति को ब्रह्मानन्द से भिन्न माना है।

आधुनिक विचारकों व भारतीय सौन्दर्यशास्त्रियों में डा. के.सी. पाण्डेय, डॉ. के.एम. रामास्वामी, डॉ. कुमार विमल एवं रमेश कुन्तल मेघ का नाम उल्लेखनीय है। के.एम. रामास्वामी शास्त्री ने ''भारतीय सौन्दर्यशास्त्र'' में आनन्द और रस की धारणा अभिनव गुप्त द्वारा निरूपित काव्य तत्वों के बीच चारुत्व प्रतीति की धारणा को द्रष्टव्य माना है। कुमार विमल की दृष्टि भाववादी एवं मानववादी दृष्टि है इन्होंने सौन्दर्य को दिव्य माना है। वह लिखते हैं ''सौन्दर्य शास्त्र का सम्बन्ध सौन्दर्य के सम्पूर्ण क्षेत्र से माना जा सकता है, किन्तु सही अर्थ में सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध ललित कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौन्दर्य के साथ है, अन्य माध्यमों में अभिव्यक्त सौन्दर्य के साथ नहीं।''

डा. रमेश कुन्तल मेघ का सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण व व्यापक है। अपनी पुस्तक ''अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा'' में कला एवं सौन्दर्य बोध, कलाकार, कलाकृति, कलाओं का वर्गीकरण, सृजन प्रक्रिया, सौन्दर्य की तात्विक प्रकृति आदि पर उन्होंने गंभीरता से विचार किया है। सौन्दर्य चिन्तक श्री के.सी. पाण्डेय के अनुसार, ''सौन्दर्य वे कलाएं हैं जिनकी कृतियां परम ब्रह्म को इन्द्रिय ग्राह्य रूप में इसप्रकार से

उपस्थित करती हैं कि वे आवश्यक मानसिक दशाओं से युक्त सहृदय कला–रसिकों के लिए ब्रह्मानन्द प्राप्ति का समुचित साधन बन जाती हैं।

इस प्रकार ब्रह्मानन्द सहोदर अर्थात परम सत्य को मानव जीवन में अवतरित करने के लिए ही कलाओं की रचना हुई अर्थात, 'सुन्दरम' की अभिव्यक्ति किए जाने के लिए जो माध्यम बना, उसे कला का नाम दिया गया। इन्हीं कलाओं के द्वारा उस परम सत्य को रूपाकृति दी गई, जिसे हम सुन्दर, चिन्मय, रहस्यमय मानते हैं, भारतीय दर्शन में परम सत्य को सच्चिदानंद रूप और सौन्दर्य को उस परम सत्ता का प्रतिबिम्ब माना गया है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में पूरी दुनिया में महत्वपूर्ण बदलाव हो रहे थे, जिसे 'विश्व की अर्थ व्यवस्था का वैश्वीकरण' कहा जाने लगा जो कि सम्पूर्ण विश्व को समाहित या एकीकरण करने की प्रक्रिया है। इसमें विश्व को एक समग्र इकाई एवं बाजार को एक उपकरण के रूप में स्वीकार किया जाता है। यद्यपि इसका स्वरूप आर्थिक रहा है, तथापि राजनीतिक, सांस्कृतिक सामाजिक प्रक्रियायें भी इसमें सम्मिलित हो गयी हैं। वैश्वीकरण में डब्ल्यू0टी0ओ0, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष जैसे विश्वव्यापी संगठनों एवं अन्तर्राष्ट्रीय निगमों की विशेष भूमिका है साथ ही इसके तीव्र विकास में सूचना क्रान्ति जैसी नयी प्रौद्योगिकी का योगदान है।

भूमण्डलीकरण के दौर में तकनीक, एक स्वायत्त शक्ति के रूप में विकसित होने के बजाय आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति के रूप में ही विकसित हुई। परिणाम स्वरूप तकनीक का उपयोग या प्रयोग पूंजी के साम्राज्य तथा सत्ता के विस्तार में हुआ। इस क्रम में सर्वसाधरण मनुष्य वैज्ञानिक तकनीकों का उपभोक्ता मात्र बन गया है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। इस पुरातन सिद्धांत को भूमण्डलीकरण ने तकनीक के सहारे उलट दिया है और अब आविष्कार ही आवश्यकता की जननी हो गया है।

अब माल पहले बनता है और फिर उसकी आवश्यकता महसूस करायी जाती है जिसके परिणामस्वरूप गैरजरूरी वस्तुओं को भी दैनिक जीवन में शामिल करा दिया जाता है। इस तरह पहले का ग्राहक अब उपभोक्ता बन गया है।

अपने परिवेश को नृत्य, संगीत, चित्र, मूर्ति आदि से सजाना या साहित्य और विज्ञान के जरिये अपने वातावरण का प्रतीकात्मक अनुभव करना, मनुष्य को सबसे ऊँचे दर्जे का आनन्द देता है। इस प्रक्रिया में निर्मित कला, वस्तु आदि सब मनुष्य के स्वाभाविक उपभोग के क्षेत्र में आते हैं। संक्षेप में, उपभोग की वस्तुएं वे हैं, जिनके अभाव में हम स्वाभाविक रूप से अप्रीतिकर तनाव का अनुभव करते हैं– चाहे वह भोजन के अभाव में भूख की पीड़ा से उत्पन्न हो, अथवा संगीत एवं कलाओं के अभाव में नीरसता की पीड़ा से उत्पन्न तनाव हो।

इसके विपरीत ऐसी वस्तुएं, जो वास्तव में मनुष्य की किसी मूल जरूरत या कला और ज्ञान की वृत्तियों की दृष्टि से उपयोगी नहीं हैं लेकिन व्यावसायिक दृष्टि से प्रचार के द्वारा जरूरी बना दी गयी हैं, वे सब उपभोक्तावादी संस्कृति की देन हैं। पुराने सामंती या अंधविश्वासी समाज में भी ऐसी वस्तुओं का उपभोग होता था जो उपयोगी नहीं थी बल्कि कष्टायक थीं। उदाहरण के लिए, चीन में कुलीन महिलाओं के लिए बचपन से पांव को छोटे जूते में कसकर छोटा रखने का रिवाज था, लेकिन यह प्रचलन औरतों की गुलामी और मर्दों की मूर्खता का परिणाम था। अतः शोषण की समाप्ति या चेतना बढ़ने के साथ इसका अंत होना लाजिमी था। लेकिन उपभोक्तावादी संकृति ऐसी वस्तुओं को शुद्ध व्यावसायिकता के कारण योजनाबद्ध रूप से लोगों पर आरोपित करती हैं और तकनीक की आधुनिकतम खोजों, का इसके लिए प्रयोग करती हैं कि इन वस्तुओं की माया लोगों पर इस हद तक छा जाये कि वे इनके लिए पागल बने रहें।

भारतीय चिन्तन में उपभोक्तावाद या भोगवाद की सराहना नहीं मिलती और न ही इसे नैतिकता की दृष्टि से ठीक माना जाता है। प्राचीन मूल्यों में अर्थ एवं काम को धर्म एवं मोक्ष से बांधा गया है। पाश्चात्य चिन्तन में भी उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को मानवीय मूल्य के लिए नुकसान देह बताया गया है।

उपर्युक्त उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्परिणाम स्वरूप संगीत के सौन्दर्यबोध में परिवर्तन हो रहा है जिससे संगीत को मात्र बाजार की वस्तु के तौर पर देखा जा रहा है जिससे शान्ति, सत्य की खोज, आत्मानुभूति आदि सौन्दर्यशास्त्र के तत्व संगीत से लुप्त होते जा रहे हैं जिससे संगीत मानव जीवन का जीवन की गुणात्मक विकास में अपेक्षित योगदान नहीं कर पा रहा है।

वस्तुतः यहां आवश्यकता बाजार केन्द्रित उपभोक्तावादी सौन्दर्यबोध के विरोध की नहीं बल्कि उसके हितकारी एवं विनाशकारी दोनों प्रकार की सम्भावनाओं के प्रति सजग रहने की है। भूमण्डलीकरण के दौर में तकनीक के सहारे मानव की मूलभूत सौन्दर्यबोध की पूर्ति संगीत से की जा सकती है। यह साधन मानवता सम्मत हो सकते हैं जिसे मानवता रूपी सर्वोच्च साध्य की प्राप्ति में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न उपभोक्तावादी सौन्दर्यबोध रूपी नयी सांस्कृतिक चुनौती की पहचान एवं इसका संभावित समाधान दर्शन एवं संगीत दानों का उत्तरदायित्व है ताकि सत्यम् शिवम् एवं सुन्दरम् की ओर मानव समाज बढ़ सकता है।

संदर्भ :

1. दुबे अभय कुमार, संपादक – भारत का भूमण्डलीकरण, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2007
2. जैन, नीरज, वैश्वीकरण या पुनः औपनिवेशीकरण, गार्गी प्रकाशन, सहारनपुर, 2004
3. मिश्र गिरीश–पाण्डेय बृज किशोर : भूमण्डलीकरण मिथक या यथार्थ, अभिधा प्रकाशन, रामदयालपुर, मुजफ्फरपुर, वर्ष 2005।
4. काबरा कमल नयन, बदलता भारत–दावे और हकीकत, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज नई दिल्ली, 2008
5. सिंह अमित कुमार, भूमण्डलीकरण और भारत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
6. विश्व संगीत का इतिहास– अमल दाश शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990.
7. जोशी ललित, उपभोग की संस्कृति, इतिहास बोध जनवरी–जून, वर्ष 2009 अंक 19
8. सौन्दर्य तत्वमीमांसा–डॉ0 श्यामलता गुप्ता, सीमा साहित्य भवन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1992.
9. प्रभात पटनायक, साम्राज्यवाद नया और पुराना, लोक प्रकाशन गृह, नई दिल्ली, 2004

****